Research Paper IMPACT FACTOR VALUE : 5.983 | E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 11 | ISSUE : 5 | MAY 2025

हिंदी साहित्य में विकलांग संवेदना : आधुनिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. राजेश शर्मा [1]

[1] सहायक आचार्य, हिंदी, जनार्दन राय नगर राजस्थान विद्यापीठ,(डीम्ड टू बी विश्वविद्यालय), उदयपुर.

ABSTRACT:

आधुनिक हिंदी साहित्य ने समाज के यथार्थ को केवल बाह्य घटनाओं के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना, नैतिक चेतना और सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति को सुदृढ़ किया है। इस क्रम में विमर्शवादी चेतना ने उन वर्गों और समुदायों को साहित्य के केंद्र में लाने का कार्य किया है, जिन्हें लंबे समय तक सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक हाशिये पर रखा गया। विकलांग संवेदना इसी प्रकार का एक महत्त्वपूर्ण और अपेक्षाकृत नवीन विमर्श है। परंपरागत सामाजिक दृष्टि में विकलांगता को प्रायः दया, अक्षमता और अभिशाप के रूप में देखा गया, जिसके कारण विकलांग व्यक्ति को सामाजिक गरिमा, आत्मसम्मान और समान अवसरों से वंचित रहना पड़ा। आधुनिक हिंदी साहित्य ने इस रूढ़ दृष्टिकोण को चुनौती दी है और विकलांगता को एक मानवीय स्थिति के रूप में स्वीकार करते हुए उसे सामाजिक संरचना, समान अधिकार और समावेशिता के प्रश्न से जोड़ दिया है।

यह शोध आलेख हिंदी साहित्य में विकलांग संवेदना की अवधारणा, उसके विकास और आधुनिक संदर्भों में उसके स्वरूप का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि विकलांग संवेदना केवल शारीरिक अक्षमता के चित्रण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक भेदभाव, मानसिक पीड़ा, आर्थिक वंचना, समान अधिकारों की चेतना और आत्मसम्मान की स्थापना से गहराई से जुड़ी हुई है। आधुनिक हिंदी साहित्य में विकलांग पात्रों का यथार्थवादी और संवेदनशील चित्रण समाज में मानवीय गरिमा और समावेशी दृष्टिकोण के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

KEYWORDS:

विकलांग संवेदना, हिंदी साहित्य, आधुनिक साहित्य, मानवीय गरिमा, विमर्शवाद, सामाजिक यथार्थ, समावेशिता।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
25th May 2025	30th May 2025

प्रस्तावना

साहित्य केवल समाज का दर्पण भर नहीं होता, बल्कि वह सामाजिक चेतना का संवाहक भी होता है। समय के साथ समाज में घटित होने वाले परिवर्तन, संघर्ष और अंतर्विरोध साहित्य में न केवल प्रतिबिंबित होते हैं, बल्कि साहित्य उन्हें विश्लेषित कर समाज को आत्मचिंतन की दिशा में भी प्रेरित करता है। आधुनिक हिंदी साहित्य की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसने वंचित, उपेक्षित और हाशिये पर रखे गए समुदायों को साहित्य के केंद्र में लाने का गंभीर प्रयास किया है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श और अल्पसंख्यक विमर्श के साथ-साथ विकलांग संवेदना अथवा विकलांग विमर्श इसी वैचारिक विकास का स्वाभाविक परिणाम है।

परंपरागत भारतीय समाज में विकलांगता के प्रति दृष्टिकोण प्रायः नकारात्मक रहा है। विकलांगता को एक अभिशाप, दुर्भाग्य या पूर्वजन्म के कुकर्मों का परिणाम मानने की प्रवृत्ति सामाजिक चेतना में गहराई तक पैठी हुई थी। इस सोच के परिणामस्वरूप विकलांग व्यक्ति को परिवार और समाज में बोझ के रूप में देखा गया। उसे निर्णयों से बाहर रखा गया, उसकी क्षमताओं को नकारा गया और उसे सामाजिक सम्मान से वंचित किया गया। यह स्थिति केवल शारीरिक अक्षमता तक सीमित नहीं थी, बल्कि मानसिक, सामाजिक और आर्थिक स्तर पर भी विकलांग व्यक्ति को हाशिये पर धकेल देती थी।

आधुनिक हिंदी साहित्य ने इस रूढ़ और अमानवीय दृष्टिकोण को तोड़ने का प्रयास किया है। आधुनिक रचनाकार विकलांग संवेदना को एक मानवीय दृष्टि के रूप में ग्रहण करते हैं। उनके अनुसार विकलांग व्यक्ति को दया या सहानुभूति की नहीं, बल्कि समान अधिकार, अवसर और सम्मान की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण में विकलांगता को व्यक्तिगत कमजोरी नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना की असफलता माना गया है। यदि समाज अपनी व्यवस्थाओं को इस प्रकार निर्मित करता है कि सभी व्यक्तियों को समान अवसर, शिक्षा, रोजगार और गरिमामय जीवन प्राप्त हो, तो विकलांगता अपने आप में बाधा नहीं रह जाती। इस प्रकार विकलांगता का प्रश्न व्यक्ति से अधिक समाज से जुड़ जाता है।

साहित्य में विकलांग संवेदना समाज की इसी असफलता को उजागर करती है। यह संवेदना विकलांग व्यक्ति को करुणा का पात्र बनाकर प्रस्तुत करने के बजाय उसे आत्मसम्मान और मानवीय गरिमा के साथ चित्रित करती है। प्रारंभिक हिंदी साहित्य में विकलांग पात्रों का चित्रण या तो नगण्य रहा है अथवा अत्यंत रूढ़ ढंग से किया गया है। अनेक रचनाओं में विकलांगता को हास्य, दया या उपदेश का विषय बना दिया गया। कहीं-कहीं विकलांग पात्र केवल सहानुभूति जगाने का साधन बनकर रह गए। इस प्रकार के चित्रण में सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवीय दृष्टि का स्पष्ट अभाव दिखाई देता है।

आधुनिक हिंदी साहित्य ने इस स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन प्रस्तुत किया है। विकलांगता को सामाजिक न्याय और मानवाधिकार के प्रश्न से जोड़ते हुए साहित्य ने यह स्पष्ट किया है कि किसी भी समाज की प्रगति का मूल्यांकन इस बात से किया जाना चाहिए कि वह अपने सबसे कमजोर वर्गों के साथ कैसा व्यवहार करता है। विकलांग संवेदना इसी कसौटी पर समाज को परखने का कार्य करती है।

कहानी, उपन्यास, कविता और आत्मकथात्मक लेखन जैसी विविध साहित्यिक विधाओं में विकलांग संवेदना की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। प्रेमचंद के साहित्य में विकलांग संवेदना के प्रारंभिक संकेत मिलते हैं। यद्यपि उनके यहाँ विकलांगता आधुनिक विमर्श के रूप में उपस्थित नहीं है, फिर भी उनकी रचनाओं में सामाजिक और आर्थिक विकलांगता का मार्मिक चित्रण मिलता है। 'बूढ़ी काकी' में वृद्धावस्था के माध्यम से उपेक्षित स्त्री की मानसिक और सामाजिक असहायता को प्रस्तुत किया गया है। 'कफन' में गरीबी, शोषण और सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न विवशता एक प्रकार की सामाजिक विकलांगता के रूप में सामने आती है।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की कविता 'वह तोड़ती पत्थर' एक श्रमिक स्त्री के संघर्ष, पीड़ा और सामाजिक असमानता का सशक्त चित्र प्रस्तुत करती है। यहाँ विकलांगता शारीरिक नहीं, बल्कि आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न है। यह कविता श्रमशील वर्ग

की उस विवशता को उजागर करती है, जो उसे निरंतर संघर्ष में बनाए रखती है।

मुक्तिबोध और केदारनाथ सिंह की कविताओं में आमजन की असहायता, आक्रोश और अस्तित्वगत संकट सामाजिक विकलांगता के रूप में अभिव्यक्त होता है। यह विकलांगता व्यक्ति की क्षमताओं से नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं से उत्पन्न होती है। इन कवियों की रचनाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि आधुनिक समाज में मनुष्य किस प्रकार व्यवस्था का शिकार बन जाता है।

कहानी साहित्य में सुधा अरोड़ा जैसी लेखिकाओं ने अशक्त और उपेक्षित व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति को गहरी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। उनके लेखन में विकलांग पात्र सहानुभूति के नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और संघर्ष के प्रतीक के रूप में सामने आते हैं। दलित साहित्य के संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित जीवन की सामाजिक विकलांगता, शोषण और बहिष्कार को सशक्त रूप में उभारा है। यहाँ विकलांगता शारीरिक न होकर सामाजिक है, जो व्यक्ति की पहचान और गरिमा को निरंतर चुनौती देती है।

इस प्रकार आधुनिक हिंदी साहित्य में विकलांग संवेदना केवल शारीरिक अक्षमता तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह सामाजिक संरचना, सत्ता-संबंधों और मानवीय मूल्यों की आलोचना का माध्यम बन जाती है। यह संवेदना समाज से यह प्रश्न पूछती है कि क्या वह वास्तव में समानता और न्याय पर आधारित है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में विकलांग संवेदना का विकास आधुनिक साहित्यिक और सामाजिक चेतना का एक महत्त्वपूर्ण संकेत है। यह संवेदना विकलांग व्यक्ति को दया या करुणा का पात्र न मानकर उसे पूर्ण मानवीय गरिमा के साथ प्रस्तुत करती है। समावेशिता पर बल देते हुए यह विमर्श एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर, सम्मान और अधिकार प्राप्त हों। इस दृष्टि से विकलांग विमर्श आधुनिक हिंदी साहित्य में सामाजिक न्याय, मानवाधिकार और मानवीय मूल्यों की स्थापना का सशक्त माध्यम बनकर उभरता है।

REFERENCES

1. सिंह, नामवर. आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।

2. मिश्र, शिवकुमार. हिंदी साहित्य और सामाजिक चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।

3. वर्मा, अज्ञेय. समकालीन हिंदी साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी।

4. पाली, रमेशचंद्र. हिंदी कथा साहित्य: नई दृष्टि. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

5. कुमार, रविंद्र. साहित्य और सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस।